NOVATEUR PUBLICATIONS
JournalNX-A Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN No:2581-4230
VOLUME 5, ISSUE 4, Apr. -2019

Anju Rani

Assistant Professor of Geography

Govt. College for Women, Narnaul, Mahender Garh

झुंझुनूँ जिले में जल संसाधन की गंभीर समस्या से निजात पाने की विधियाँ

Abstract

झुन्झुनूँ जिला पूर्णतः मरूस्थलीय परिस्थितियों के अन्तर्गत आता है। यहाँ जल संसाधन काफी कम मात्रा में उपलब्ध है।यूँ तो राजस्थान के लिए जलसंरक्षण की विधियाँ नई बात नहीं है। यहाँ का जनमानस जल संरक्षण हेतु अनेक उपाय अपनी परम्परा में सम्मिलित कर चुका है तथापि नवीन वैज्ञानिक विधियों के आविष्कार व पुरातन विधियों को प्रकाश में लाने के कार्य में अनेक विद्वानों ने अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है।

Introduction

पिछले कुछ द□ाकों में जल पर किये गये भाोध विशयक अध्ययनों की विवेचना के उपरान्त यह स्पश्ट हो जाता है कि निरन्तर

बढ़ती जनसंख्या तथा औद्योगिकरण के कारण जल की आव□यकता बढ़ती जा रही है। मानसून की अनि□चतता, अनियमितता एवं घटते जल स्तर के कारण वर्तमान में उपलब्ध जल स्त्रोतों के उचित प्रबन्ध की आव□यकता महसूस की जाने लगी है। आज झुन्झुनूँ क्षेत्र में पानी की जो विकट समस्या बनी है उसको किस प्रकार हम कम कर सकते हैं या क्या उपाय करें कि इस समस्या से निजात पाई जा सके।

इसके लिए हम निम्न प्रकार से उपाय कर सकते हैं।

1. जिले में जल के महत्व के प्रति जागरूकता लाना : लोगों को इसके प्रति जागरूक करना कि जल एक अनमोल चीज है। इसका सर्वोत्तम प्रकार से उपयोग करना चाहिए। अगर जल का अविवेकपूर्ण रूप से उपयोग किया जाता रहेगा तो आने वाले समय में इसकी गंभीर समस्या हमारे सामने आयेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष तौर पर महिलाओं को जल का महत्व बताना अति आवश्यक है। क्योंकि महिलाओं को जल का वास्तविक महत्व का पूर्ण ज्ञान नहीं है।अतः लोगों को जल के महत्व की उचित जानकारी देकर जल का संरक्षण किया जा सकता है।

2. वर्षा के जल का उचित संरक्षण : जब वर्षा होती है तो पानी उचित संरक्षण के अभाव में शीघ्र ही बहकर चला जाता है जिसका कोई उपयोग नहीं होता है। अतः लोगों को वर्षा जल के संरक्षण के लिए उचित तकनीकों का ज्ञान कराना चाहिए। अगर हम वर्षा जल को संरक्षित कर लेते हैं तो इसका कई दिनों तक नहाने, धोने, पशुओं के लिए, सिंचाई आदि के लिए काम में ले सकते हैं।

(क) पीवीसी पाइप का इस्तेमाल करके छत का वर्षा जल एकत्रित किया जा सकता है।

- रेत और ईंट का प्रयोग करके जल का छनन किया जा सकता है।
- भूमिगत पाइप के द्वारा जल हौज तक ले जाया जाता है जहां इसे तुरन्त प्रयोग किया जा सकता है।
- हौज से अतिरिक्त जल कुऐं तक ले जाया जाता है।

- कुऐं का जल भूमिगत जल का पुनर्भरण करता है।
- बाद में इस जल का उपयोग किया जा सकता है।

(ख) हैण्डपंप के माध्यम से पुनर्भरण

(ग) बेकार पड़े कुऐं के माध्यम से पुनर्भरण

(घ) बांस ड्रिप सिंचाई प्रणाली

पहाड़ी शिखरों पर सदानीरा झरनों की दिशा परिवर्तित करने के लिए बांस के पाइपों का उपयोग किया जाता है। इन पाइपों के माध्यम से गुरूत्वाकर्षण द्वारा जल पहाड़ के निचले स्थानों तक पहुँचाया जाता है।

- बांस से निर्मित चैनल से पौधे के स्थान तक जल का बहाव परिवर्तित किया जा सकता है। पौधे तक बांस पाइप से बनाई व बिछाई गई विभिन्न जल शाखाओं में जल वितरित किया जाता है। पाइपों में जल प्रवाह इसकी स्थितियों में परिवर्तन करके नियंत्रित किया जा सकता है।

- यदि पाइपों को सड़क पार ले जाना हो तो उन्हें भूमि पर ऊँचाई से ले जाया जाता है।
- संकुचित किए हुए चैनल्स सेक्शन और पर्यावरण इकाई जल सिंचाई के अन्तिम चरण में प्रयुक्त की जाती है। अन्तिम चैनल सैक्शन से पौधे की जड़ों के निकट जल गिराया जा सकता है।

4. सरकार द्वारा कानून बनाकर : तमिलनाडू देश का एकमात्र राज्य है जहां पूरे राज्य में हर घर में छत वर्षाजल संग्रहण ढांचे को बनाया जाना आवश्यक कर दिया गया है। इस संदर्भ में दोषी व्यक्तियों पर कानूनी कार्यवाही हो सकती है। अतः इस प्रकार के कानून बनाकर जल संरक्षण के उचित कदम उठा सकते हैं।

5. वनों की कटाई पर रोक : इस क्षेत्र के वनों को बुरी तरह से समाप्त किया गया है जिसका नकारात्मक प्रभाव यह हुआ कि यहाँ वर्षा की मात्रा में कमी आ रही है।

अतः लोगों को वृक्षारोपण व वन संरक्षण का महत्व बताना चाहिए। अगर वनों को इस प्रकार से समाप्त किया जाता रहा तो आने वाले समय में इसके गंभीर परिणाम आयेंगे।

6. प्राचीन जल संरक्षण प्रणालियों का महत्व बताना : लोगों को यह बताना कि प्राचीन जल के संरक्षण के स्रोत बहुत उपयोगी हैं तथा आधुनिक समय में लोगों को इनके महत्व बताना। आज इन प्राचीन जल स्रोतों का बुरी तरह से विनाश किया जा रहा है तथा उचित देखभाल के अभाव में ये समाप्त होने के कगार पर हैं।

7. सरकार के द्वारा पानी का उचित प्रबन्ध करना : जब पानी की गंभीर समस्या उत्पन्न होती है तब यहाँ प्रशासन उचित कार्य नहीं कर पाता है। अतः समय पहले ही प्रशसन को इससे निपटने के लिए कड़े प्रबन्ध करने चाहिए।

राजस्थान में जल संरक्षण की परम्परागत प्रणालियां

राजस्थान में जल की संरक्षण की परम्परागत प्रणालियां स्तरीय हैं। यहाँ जल संचय की परम्परा सामाजिक ढांचे से जुड़ी हुई है। जल स्रोतों को पूजा जाता है। यहाँ के लोगों ने पानी के कृत्रिम स्रोतों का

अविष्कार किया है। जिसके आधार पर कठिन जीवन को भी सहज बना दिया गया है। राजस्थान के अनेक क्षेत्रों में जल महत्व की लोक कथाऐं प्रचलित हैं।

पिछले कुछ समय से जल संरक्षण शब्द महत्वपूर्ण हो गया है। कई विचारात्मक योजनाऐं तथा उद्योग जगत जल संरक्षण अवधारणा से प्रभावित हुआ है। अतः आज तेजी से कम होता जल एवं जल संरक्षण संसाधन को पुनर्जीवित किया जाये, इसकी आज महती आवश्यकता है।

परम्परागत जल प्रबन्धन की प्रणालियों को विकसित किये जाने से ही इस समस्या का समाधान है। जल जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। जल संरक्षण ही विकास की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है।

राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है। जनसंख्या की अवधारणा में यह 8वें नम्बर पर है। देश की 5.6 प्रतिशत जनसंख्या राजस्थान में निवास करती है। परन्तु देश में उपलब्ध जल का मात्र एक प्रतिशत जल ही राजस्थान में पाया जाता है। इसलिए परम्परागत जल स्रोत को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

राजस्थान में परम्परागत जल स्रोत

तालाब : तालाब में वर्षा के पानी को एकत्रित किया जाता है। इसकी देखरेख की जिम्मेदारी समाज की होती थी। अनेक तालाबों का शहरीकरण हो गया है। राज्य में स्थित तालाबों पर तत्काल ध्यान रखने की आवश्यकता है क्योंकि इनसे अनेक कुओं एवं बावड़ियों को पानी मिलता है।

झालरा :झालरा अपने से ऊँचे तालाबों और झीलों के रिसाव से पानी प्राप्त करते हैं। इनका स्वयं का कोई आगोर नहीं होता है। झालराओं का पानी पीने हेतु नहीं, बल्कि धार्मिक रिवाजों तथा सामूहिक स्नान आदि कार्यों में उपयोग होता है। इनका आकार आयताकार होता है। इसके तीन ओर सीढ़ियां बनी होती थी। 1660 ई. में निर्मित जोधपुर का महामन्दिर झालरा प्रसिद्ध था। अधिकांश झालराओं का आजकल प्रयोग बन्द हो गया है। जल संचय की दृष्टि से इनका विशेष महत्व रहा है। झालराओं का वास्तुशिल्प सुन्दर होता है। इनके संरक्षण की आवश्यकता है। प्रशासनिक व्यवस्था के साथ–साथ जन सहयोग की भी आवश्यकता है। खदीनों के नीचे ढलान

में कुआं भी बनाया जाता है जिसमें रिस कर पानी आता रहता है जो पीने के उपयोग में आता है।

जल प्रबन्धन कार्यक्रम में परम्परागत निर्मित प्राचीन खदीनों का वैज्ञानिक रखरखाव होना चाहिए तथा नई खदीने पारम्परिक तकनीक ज्ञान के सहारे निर्मित की जानी चाहिए।

राजस्थान सरकार ने नई खदीने बनवाने की योजना बनाई है। वे निम्न गुणवत्ता की हैं जो तेज वर्षा को सह नहीं पाती एवं उनमें दरारें पड़ जाती हैं।

टोबा : टोबा एक महत्वपूर्ण पारम्परिक जल प्रबन्धन है। यह नदी के समान आकृति वाला होता है। यह नदी से अधिक गहरा होता है। सघन संरचना वाली भूमि जिसमें पानी का रिसाव कम होता है। टोबा निर्माण के लिए यह उपयुक्त स्थान माना जाता है। इसका ढलान नीचे की ओर होना चाहिए। टोबा के आस–पास नमी होने के कारण प्राकृतिक घास उग जाती है जिसे जानवर चरते हैं। प्रत्येक गाँव में जनसंख्या के हिसाब से टोबा बनाये जाते हैं, इसके दो तरफ मिट्टी की पाल होती है।

तीसरे तरफ पत्थर की पक्की चादर बनाई जाती है। खदीन का क्षेत्र विस्तार 5 से 7 किलोमीटर तक होता है। पाल सामान्यतया 2 से 4 मीटर तक ऊँची होती है। पानी की मात्रा अधिक होने पर पानी अगले खदीन में प्रवेश कर जाता है। सूखने पर पिछली खदीन की भूमि में नमी के आधार पर फसलें उगाई जाती हैं।

मरू क्षेत्र में इन्हीं परिस्थितियों में गेहूं की फसल उगाई जाती है। खदीन तकनीकी द्वारा बंजर भूमि को भी कृषि योग्य बनाया जा सकता है। जिस स्थान पर पानी एकत्रित होता है उसे खदीन तथा इसे रोकने वाले बांध को खदीन बांध कहते हैं।

खदीन बांध इस प्रकार से बनाये जाते हैं ताकि पानी की अधिक आवक पर अतिरिक्त पानी ऊपर से निकल जाये। गहरी खदीनों में पानी को फाटक से आवश्यकतानुसार निकाल दिया जाता है।

खदीनों में बहकर आने वाला जल अपने साथ उर्वरक मिट्टी बहाकर लाता है जिसमें उपज अच्छी होती है। खदीन पायतान क्षेत्र में पशु चरते हैं जिससे पशुओं द्वारा विसरित गोबर मृदा को उपजाऊ बनाता है।

पायतान का तल पानी के साथ कटकर नहीं जाये इस हेतु उसको राख, बजरी व मोदम से लीप कर रखते हैं। टांका 40 से 45 फिट तक गहरा होता है। पानी निकालने के लिए सीढ़ियों का प्रयोग किया जाता है उस पर मीनारनुमा ढेकली बनाई जाती है जिसमें पानी खींचकर निकाला जाता है। खेतों में थोड़ी–थोड़ी दूर पर टांके या कुंडियां बनाई जाती हैं।

खदीन : खदीन का सर्वप्रथम प्रचलन 15वीं शताब्दी में जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मणों ने किया था। यह बहुउद्देशीय परम्परागत तकनीकी ज्ञान पर आधारित होती है।

खदीन के निर्माण हेतु राजा जमीन देता था। जिसके बदले में उपज का 1/4 प्रतिशत भाग देना पड़ता था। जैसलमेर जिले में लगभग 500 छोटी बड़ी खदीनें विकसित हैं जिनसे 1300 हैक्टेयर जमीन सिंचित की जाती है। वर्तमान में ईराक के लोग भी इस प्रणाली को अपनाये हुए हैं। यह ढालवाली भूमि के नीचे निर्मित होता है।

यह पानी निर्मल होता है। यह तश्तरी के प्रकार का निर्मित होता है। टांका किलों में, तलहटी में, घर की छत पर, आंगन में और खेत

आदि में बनाया जाता है। इसका निर्माण सार्वजनिक रूप से लोगों द्वारा सरकार द्वारा तथा निजी निर्माण स्वयं व्यक्ति द्वारा करवाया जाता है। पंचायत की जमीन पर निर्मित टांका सार्वजनिक होता है जिसका प्रयोग पूरा गाँव करता है।

कुछ टांके गाँव के अमीरों द्वारा धर्म के नाम पर परोपकार हेतु बनवा दिये जाते हैं। एक परिवार विशेष उसकी देखभाल करता है। टांके का निर्माण जमीन या चबूतरे के ढलान के हिसाब से किया जाता है। जिस आंगन में वर्षा का जल संग्रहित किया जाता है, उसे आगोर या पायतान कहते हैं। जिसका अर्थ होता है बटोरना। पायतान को साफ रखा जाता है क्योंकि उसी से बहकर पानी टांके में आता है। टांके के मुहाने पर सुराख हेाता है जिसके ऊपर जाली लगी होती है ताकि कचरा नहीं आ सके। टांका चाहे छोटा हो या बड़ा उसको ढककर रखते हैं।

चौधरी कुम्भाराम लिफ्ट कैनाल का पानी इस जिले के लोगों के लिए किसी अमृत से कम नहीं होगा। बरसों से यहाँ के लोग पानी की किल्लत झेल रहे हैं। पानी काफी नीचे जा चुका है। इसे सैंकड़ों फिट

गहरे ट्यूबवैल के जरिये निकालकर पेयजल के लिए सप्लाई किया जा रहा है। फ्लोराइड के कारण यह पानी पीने लायक नहीं लेकिन मजबूरी है। खेतड़ी में नहर का पानी पीने हेतु एमओयू ओने से लाखों लोगों को मीठा पानी मिलने की उम्मीद है।

अलसीसर ब्लॉक को छोड़कर संपूर्ण जिला डार्क जोन की श्रेणी में आ चुका है। पानी 80 मीटर से अधिक गहराई पर पहुँच चुका है।

सर्वाधिक गहराई में भूमिगत जल सूरजगढ़ विधानसभा क्षेत्र में है। गुंती, झांझा, खांदवा, बुहाना समेत कई गाँवों में पानी पाताल में पहुँच चुका है।

जल संचय और संरक्षण प्रबन्ध हमारे यहाँ सदियों पुराना है। राजस्थान में खडीन, कुण्ड और नाड़ी महाराष्ट्र में बंधारा और ताल, हिमाचल के कुहल, तमिलनाडू में ऊटी, केरल में सुरंगम, जम्मू क्षेत्र में पोखर और कर्नाटक में कट्टा आदि नाम जल प्रबन्धन के प्राचीन स्रोत थे। ये सभी परम्परगात जल स्रोत वहाँ की परिस्थिति की और संस्कृति की अनुरूपता के आधार पर हैं। स्थानीय जरूरतों को पर्यावरण से तालमेल रखते हुए पूरा किया है।

आधुनिक व्यवस्थाऐं पर्यावरण का दोहन करती हैं। भारत में वर्षा मौसमी है तीन महीने की होती है। देश के 80 प्रतिशत हिस्से में इन तीन महिनों में ही 80 प्रतिशत वर्षा हो जाती है। वर्षा का बहुत ज्यादा पानी नदियों के माध्यम से बह जाता है। जरूरत इस बात की है कि वर्षा के पानी को स्थानीय जरूरत ओर भौगोलिक स्थितियों के हिसाब से संधारित किया जाना चाहिए। इसमें भूजल का भण्डारण भी हो जाता है। जल संचय की पारम्परिक प्रणालियों से लोगों की घरेलू और सिंचाई सम्बन्धी जरूरतें पूरी होती हें।

साक्ष्यों से पता चलता है कि प्राचीन भारत के शासकों ने जल संचय की बेहतर प्रणालियों को अपनाते हुए जल और सिंचाई की आपूर्ति के लिए नहरों का न केवल निर्माण करवाया था। बल्कि उनके रखरखाव हेतु आवश्यक प्रशासनिक व्यवस्थाऐं भी विकसित की थी।

पारम्परिक प्रणालियों के सामुदायिक जल प्रबन्धन के कारण हर व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकता पूरी होती थी। इन जल प्रबन्धन प्रणालियों की आज अधिक प्रासंगिकता है जिन्होंने सूखे या अकाल के लम्बे दौर में समुदायों को जीवनदान दिया है।

जल की आधुनिक प्रणाली में कमी तब महसूस होती है जब बिजली नहीं आती है, नल में पानी सूखता है, बांध में मिट्टी भरने से पानी क्षमता नहीं रहती। उस समय पारम्परिक प्रणालियां याद आती हैं।

देश के बहुत बड़े हिस्से में आधुनिक प्रणाली भारी लागत की वजह से नहीं पहुँच पाती है। अतः वहाँ के लोग पीने के जल व सिंचाई के लिए परम्परागत जल प्रबन्धन पर निर्भर है। पारम्परिक जल प्रबन्धन प्रणालियां पुराना ढांचा नहीं हैं।

नलकूपों से भारी मात्रा में भू–जल निकाला जा रहा है। सरकारी एजेन्सियों को यह पता नहीं कि यह सब परिस्थितिकीय बुनियादी मानदण्डों के विपरीत है। इन प्रणालियों ने सरकार पर आत्मनिर्भरता बढ़ा दी है।

पारम्परिक प्रणालियों में सस्ती, आसान तकनीकी का प्रयोग होता था। जिसे स्थानीय लोग भी आसानी से बनाये रख सकते थे। पानी आर्थिक विकास का बड़ा आधार है। जल प्रबन्धन प्रणालियों का यदि व्यवहारिक क्षमता और समुदाय आधारित विकास करना है तो जल संग्रहण की परम्परागत प्रणालियों का निर्माण आज भी प्रासंगिक है।

References

1. सफी एम (1960):लैण्ड यूटीलाइजेशन इन इस्टर्न उत्तर प्रदेश यूनिवर्सिटी, अलीगढ़
2. इपस्टेन, टी.एस. (1964): इकोनोमिक डवलपमेंट एवं सोशल चैन्ज इन साउथ इण्डिया, मानचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रैस, यू.एस.एस.
3. दयाल एम (1968):द चेनजिंग पैटनर्स ऑफ इंडिया इंटरनेशनल ट्रेडस, इकोनोमिक ज्योग्राफी वोल्यूम 44, पृष्ठ संख्या 240 – 269, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर और दिल्ली।
4. मुरदिया बी.एस. (1968):राजस्थान में ग्रामीण विद्युतीकरण, पीएच.डी. थिसिस, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
5. जोशी, य.गो (1972): '' भारत का वृहत भूगोल'' मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. दास गुप्ता, ए.के. (1973):स्टडीज इन यूटीलाइजेशन ऑफ एग्रीकल्चर लैण्ड एण्ड इकोनोमिक डवलपमेंट इन इंडिया, नई दिल्ली
7. गहलोत जे.एस. (1974):राजस्थान में सामाजिक जीवन हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर
8. गहलोत, एस.वी. (1974): ''राजस्थान में सामाजिक जीवन का चित्रण'' कॉलेज बुक हाउस, जयपुर।
9. श्रीनिवास एम.एन. (1975):आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली